॥श्रीः॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला
199

श्रीमदाचार्यशौनक विरचित

बृहद्देवता

(प्रथमोऽध्यायः)

(विस्तृत भूमिका, मूल [illegible] 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या,
विशेष, 48 [illegible] परिशिष्टादि सहित)

व्याख्याकार
डॉ. राकेश शास्त्री

चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्यविद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक
दिल्ली-110007 (भारत)

।।श्रीः।।

बृहद्देवता

।। प्रथमोऽध्यायः।।

(1) देवों को जानने का महत्त्व एवं वेदत्रयी

अवतरणिका– बृहद्देवता का प्रणयन करने से पूर्व आचार्य शौनक, मङ्गलाचरण की पुरातन परम्परा का निर्वहण करते हुए, मन्त्रद्रष्टा ऋषियों को नमन करते हुए कहते हैं कि–

मन्त्रदृग्भ्यो नमस्कृत्वा समाम्नायानुपूर्वशः।
सूक्तर्गर्धर्चपादानाम् ऋग्भ्यो वक्ष्यामि दैवतम्।।1।।

अन्वय– मन्त्र–दृग्भ्यः नमस्कृत्वा समाम्नाय–अनुपूर्वशः सूक्तः ऋक् –अर्ध–ऋच–पादानाम् ऋग्भ्यः दैवतम् वक्ष्यामि।।1।।

अनुवाद– मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों को प्रणाम करके, मैं वेदों में कहे गए क्रम से सूक्तों, ऋचाओं, अर्ध ऋचाओं एवं पादों के अनुसार ऋग्वेद के देवों का कथन करता हूँ।।1।।

'चन्द्रिका'– यहाँ पर ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम वेद के मन्त्रों का दर्शन करने वाले ऋषियों को नमन किया है, उसके बाद वेदों में विशेषरूप से 'ऋग्वेद' में, जिस क्रम को स्वीकार किया गया है, उसी क्रम अर्थात् सूक्त, ऋचा, अर्ध ऋचा, पाद तथा देवता आदि से कथन करने की प्रतिज्ञा की है।

विशेष–(i) आचार्य यास्क ने 'समाम्नाय' पद का अर्थ वैदिक शब्दों की सूची 'निघण्टु' से ग्रहण किया है, जबकि यहाँ पर इसका अभिप्राय वेद या वेद में प्रयुक्त मन्त्रों से है।

(ii) ऋग्विधान के रचयिता भी महर्षि शौनक हैं, वहाँ पर (1/1/1) में 'नमस्कृत्वा मन्त्रदृग्भ्यः' पाठ प्रयुक्त हुआ है।

(iii) इसीप्रकार ऋग्विधान (1/1/2) में ही 'समाम्नायानुपूर्वशः' पाठ को भी स्वीकार किया गया है।

(iv) 'वक्ष्यामि' में वर्तमान अर्थ में लृट् का प्रयोग हुआ है।

अवतरणिका– इसके बाद वेदों का अनुशीलन करने वाले लोगों के लिए देवता–ज्ञान की महत्ता के विषय में ग्रन्थकार कहते हैं कि–

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति।।2।।

अन्वय– मन्त्रे–मन्त्रे दैवतम् हि प्रयत्नतः वेदितव्यम्, हि दैवतज्ञः मन्त्राणाम् तदर्थम् अवगच्छति।।2।।

अनुवाद– वेद का अनुशीलन करने वाले लोगों को वेदों के प्रत्येक मन्त्र के देवता का ज्ञान, निश्चय ही, प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि मन्त्रों के देवताओं का ज्ञाता, मन्त्रों के उन अर्थों को सरलता से समझ लेता है।।2।।

'चन्द्रिका'– जो लोग वेदों का अनुशीलन करना चाहते हैं, उन्हें वेदमन्त्रों में प्रयुक्त देवताओं के विषय में सबसे पहले पर्याप्त प्रयत्न के साथ अवश्य ही ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि वेदमन्त्रों में प्रयुक्त होने वाले देवता के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही व्यक्ति इन मन्त्रों में निहित अर्थों को आसानी से समझ सकता है।

विशेष–(i) प्रथम 'हि' निपात का प्रयोग 'निश्चय' तथा द्वितीय हि का प्रयोग 'हेतु' अर्थ में हुआ है।

(ii) निपातों का प्रयोग वेदों में विविध अर्थों में होने के कारण आचार्य यास्क ने इनकी परिभाषा– **'उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति, इति निपाताः'** की है।

(iii) वेदमन्त्रों के अध्ययन से पूर्व उनके देवताओं के ज्ञान की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है।

अवतरणिका– वेदों के अध्ययन से पूर्व मन्त्रों के देवताओं के ज्ञान की अनिवार्यता का उल्लेख करने के बाद, वेदों का अध्ययन करने वाले वेदपाठी ब्राह्मण के लिए मन्त्रों में निहित **विज्ञान** तथा

वैदिक ऋषियों द्वारा द्रष्ट मन्त्रों में कहे गए **कर्मों के विषय में** जानने की बात को कहते हैं–

तद्धितांस्तदभिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रदृष्टिषु।
–विज्ञापयति विज्ञानं कर्माणि विविधानि च।।3।।

अन्वय– ऋषीणाम् मन्त्र–दृष्टिषु तत् हितान् तत् अभिप्रायान् विज्ञानम् कर्माणि विविधानि च विज्ञापयति।।3।।

अनुवाद–वेद–मन्त्रों के साक्षात्कार के अवसर पर, उनमें विद्यमान ऋषियों के अभिप्रायों को जानने वाला 'वेदपाठी' ही मन्त्र में स्थित विज्ञान और उसमें बताए गए अनेक कर्मों को व्यक्त कर सकता है।।3।।

'चन्द्रिका'– ऋषियों के समक्ष मूलरूप से प्रकट होते समय, वेद मन्त्रों में निहित अभिप्रायों से परिचित और उनसे सम्बद्ध संस्कारों को भलीप्रकार ग्रहण करने की क्षमता से युक्त, वेद का पाठ करने वाले लोग ही, मन्त्रों में निहित उनके विविध अभिप्रायों एवं सभी प्रकार के कर्मों से सम्बन्धित प्रामाणिक मत को व्यक्त करने में समर्थ हो सकते हैं, जबकि दूसरे लोग ऐसा करने में असमर्थ रहते हैं।

विशेष–(i) वेदमन्त्र में स्थित विज्ञान और उसमें बताए गए अनेक कर्मों को जानने के लिए, उनमें निहित अभिप्रायों तथा उनसे सम्बद्ध संस्कारों को ठीकप्रकार से ग्रहण करने की क्षमता से युक्त होने की बात कही गयी है।

(ii) 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' निरुक्त के सिद्धान्त के अनुसार वैदिक ऋषियों को वेदमन्त्रों का 'द्रष्टा' कहा गया है, इसी दृष्टि से वेद मन्त्रों को अपौरुषेय भी कहते हैं।

(iii) जिस समय ऋषियों ने वेद के मन्त्रों का दर्शन किया था, उस समय के मन्त्र में निहित विचारों का जानना तथा उनसे सम्बद्ध संस्कारों से अवगत होना, ये दोनों ही बातें अनिवार्य है।

(iv) तभी व्यक्ति मन्त्रों में निहित अभिप्राय तथा उनमें बताए गए कर्मों के विषय में प्रामाणिक बात कहने में समर्थ है।

(v) वेदमन्त्रों से प्राप्त होने वाले फलों के लिए उनकी आत्मा अर्थात् 'गहन अर्थ' तक पहुँचना आवश्यक है।

अवतरणिका– पुनः ग्रन्थकार वेदमन्त्रों से सम्बन्धित देवताओं के सम्यक् ज्ञान की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि–

न हि कश्चिदविज्ञाय याथातथ्येन दैवतम्।
लौक्यानां वैदिकानां वा कर्मणां फलमश्नुते।।4।।

अन्वय– हि कश्चित् दैवतम् याथातथ्येन अविज्ञाय, लौक्यानाम् वैदिकानाम् वा कर्मणाम् फलम् न अश्नुते।।4।।

अनुवाद– वस्तुतः कोई भी व्यक्ति, देवतत्त्व को जाने बिना लौकिक अथवा वैदिक कर्मों के फलों को पूर्णरूप से प्राप्त नहीं कर सकता है।।4।।

'चन्द्रिका'– वस्तुस्थिति यह है कि वेदों के तत्त्व को जानने के लिए, उनका अध्ययन करने का अभिलाषी व्यक्ति, वेदमन्त्रों में निहित **देवतत्त्व** को समझे बिना, उनके लौकिक तथा वैदिक कर्मों से प्राप्त होने वाले फलों को पूरी तरह प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता है।

विशेष–(i) सर्वानुक्रमणी के अनुसार भी श्रौत एवं स्मार्त संस्कारों के ज्ञान हेतु, पहले वेदमन्त्रों के 'देवतत्त्व' को जानना आवश्यक है।

(ii) ग्रन्थकार ने आगे प्रयुक्त श्लोक (1/21) में भी वैदिक कर्म की सफलता के लिए, प्रत्येक स्थिति में **देवता निर्णय** के बाद ही मन्त्रों को उससे सम्बन्धित कर्मों के साथ सम्बद्ध करने की बात की है।

अवतरणिका– इसके पश्चात् देवताओं की दृष्टि से देवों के 'तीन वर्गों का उल्लेख' करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

प्रथमो भजते त्वासां वर्गोऽग्निमिह दैवतम्।
द्वितीयो वायुमिन्द्रं वा तृतीयः सूर्यमेव च।।5।।

अन्वय– दैवतम् इह आसाम्, प्रथमः वर्गः तु अग्निम्, द्वितीयः वायुम् इन्द्रम् वा, तृतीयः सूर्यम् एव च भजते।।5।।

अनुवाद– देवों की दृष्टि से वेदों में इनमें पहला वर्ग तो अग्नि का है, जबकि द्वितीय वर्ग वायु एवं इन्द्र का है तथा तृतीय वर्ग सूर्य का ही होता है।।5।।

'चन्द्रिका'– यहाँ वेदों में देवताओं की दृष्टि से मुख्यरूप से तीन वर्गों की बात की गयी है, जिनमें **पहला वर्ग** अग्नि देवता का है, **द्वितीय** वर्ग में वायु तथा इन्द्र दोनों आते हैं, जबकि **तीसरे** वर्ग में अकेले सूर्य की गणना की गयी है।

विशेष–(i) वा निपात का यहाँ 'समुच्चय' अर्थ में प्रयोग हुआ है।

(ii) कुछ भाष्यकारों ने यहाँ प्रयुक्त वा निपात को विकल्पार्थक मानकर अर्थ किया है, जो उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि आगे 1/69 श्लोक में भी ग्रन्थकार ने यही बात करते हुए, स्पष्टरूप से दूसरे वर्ग में इन्द्र तथा वायु इन दोनों देवों को सम्मिलित किया है।

(iii) निरुक्तकार (7/5) तथा सर्वानुक्रमणीकार (1/8) ने भी देवों को इसीप्रकार तीन वर्गों में ही विभाजित किया है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–1) **देवों के तीन वर्ग**

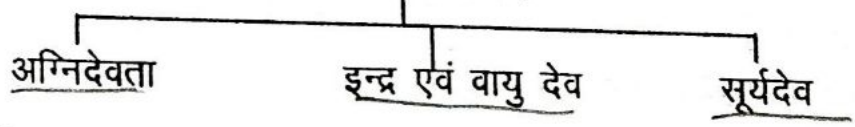

अवतरणिका– तत्पश्चात् मन्त्र के देवता के निर्धारण करने की विधि के विषय में कथन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

अर्थमिच्छन्नृषिर्देवं यं यमाहायमस्त्विति।
प्राधान्येन स्तुवन्भक्त्या मन्त्रस्तद्देव एव सः।।6।।

अन्वय– ऋषिः अर्थम् इच्छन् यम्–यम् देवम् आहायम् अस्तु इति प्राधान्येन भक्त्या स्तुवन्, तत् सः एव देवः मन्त्रः (भवति)।।6।।

अनुवाद– जब कोई ऋषि किसी प्रयोजनवश, जिस भी देवता की स्तुति पूर्णतया श्रद्धा–भक्ति के साथ करता है, तो वही उस मन्त्र का देवता होता है।।6।।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय है कि वेदों में ऋषियों ने देवों की स्तुति किसी न किसी प्रयोजन को दृष्टि में रखकर की है, इसलिए जब भी वह किसी देव–विशेष की स्तुति पूर्णतया श्रद्धा–भक्ति से करता है, तो ऐसी स्थिति में उस मन्त्र का मुख्य देवता उसी को माना जाता है।

विशेष–(i) मन्त्र का देवता जानने के बाद ही उस देवता के कर्म में उस मन्त्र के नियोजन करने के कारण, मन्त्र का देवता जानना आवश्यक है, तभी व्यक्ति को फल की प्राप्ति होती है, इसलिए यहाँ मन्त्र में देवता को जानने की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है।

(ii) वेद–मन्त्रों में ऋषि अनेकशः किसी कामना को दृष्टि में रखकर, उनकी श्रद्धापूर्वक स्तुति करते हैं, इसलिए ऐसे स्थलों पर उसी मन्त्र का देवता भी समझना चाहिए।

(iii) निरुक्तकार (7/1) में भी मन्त्र के देवता के निर्धारण के विषय में इसी तथ्य को उद्घाटित किया है।

(2) स्तुति तथा आशीर्वचन

अवतरणिका– इसके बाद ग्रन्थकार स्तुति तथा आशीष की भिन्नता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि–

स्तुतिस्तु नाम्ना रूपेण कर्मणा बान्धवेन च।
स्वर्गायुर्धनपुत्राद्यैर् अर्थैराशीस्तु कथ्यते।।7।।

अन्वय– स्तुतिः तु नाम्ना, रूपेण, कर्मणा, बान्धवेन च (भवति), आशीः तु स्वर्ग–आयुः, धन–पुत्र–आद्यैः अर्थैः कथ्यते।।7।।

अनुवाद– किसी भी देवता की स्तुति उसके नाम, स्वरूप, कर्म तथा सम्बन्ध के आधार पर की जाती है, जबकि आशीर्वाद स्वर्ग, आयुष्य, धन एवं पुत्रादि प्रयोजनों के अनुसार कहा जाता है।।7।।

'चन्द्रिका'– मन्त्रों में देवता की स्तुति की गयी है अथवा उनसे आशीर्वाद की कामना की है, इसका निर्धारण उक्त दो प्रकार से किया जाता है, (क) यदि मन्त्र में देवता विशेष के नाम, उसके रूप, कर्म एवं बन्धुत्व का कथन किया गया हो तो उसे **स्तुति** माना जाएगा, (ख) किन्तु यदि मन्त्र विशेष में स्वर्ग, आयु, धन, ऐश्वर्य, पुत्र, पौत्रादि को

प्राप्त करने की कामना की गयी हो, तो वह **आशीष** की श्रेणी में मान्य होगा। स्तुति तथा आशीष के निर्धारण के ये दो ही आधार होते हैं।

विशेष–(i) ऋग्विधान (1/1/6) में भी आचार्य शौनक ने स्तुति तथा आशीष के सम्बन्ध में इन्हीं दो आधारों का उल्लेख किया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–2) **स्तुति एवं आशीः का निर्धारण**

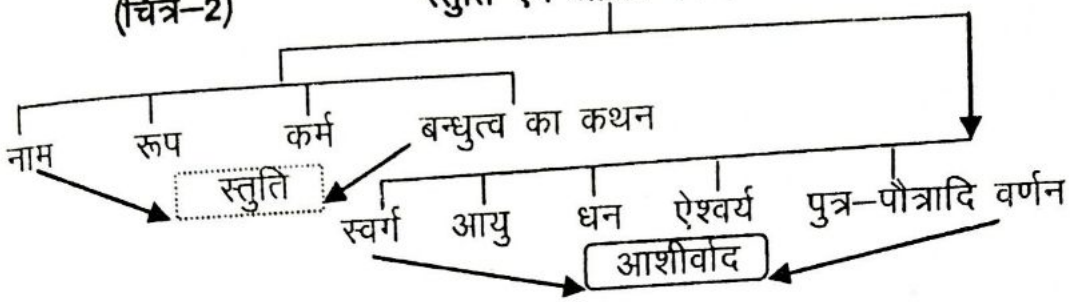

अवतरणिका– इसके बाद ग्रन्थकार 'स्तुति' तथा 'आशीष' दोनों ही मन्त्रों में स्थिति के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

स्तुत्याशिषौ तु यास्वृक्षु दृश्येतेऽल्पास्तु ता इह।
ताभ्यश्चाल्पतरास्ताः स्युः स्वर्गो याभिस्तु याच्यते।।8।।

अन्वय– यासु ऋक्षु स्तुति–आशिषौ तु, ताः तु इह अल्पाः दृश्येते, तु याभिः स्वर्गः याच्यते, ताः ताभ्यः च अल्पतराः स्युः ।।8।।

अनुवाद– जिन ऋचाओं में (ऋक्षु) स्तुति और आशीर्वचन दोनों ही विद्यमान हों, ऐसे मन्त्र तो यहाँ अत्यल्प दिखायी देते हैं, किन्तु जिनके द्वारा स्वर्ग की याचना की गयी हो, ऐसी वे ऋचाएँ तो उनसे भी कहीं अधिक कम होती हैं।।8।।

'चन्द्रिका'– ग्रन्थकार का अभिप्राय है कि ऋग्वेद में ऐसे मन्त्रों की संख्या अत्यधिक कम है, जिनमें स्तुति तथा आशीर्वचन दोनों ही एक साथ कहे गए हों, इनमें भी ऐसे मन्त्र तो उससे भी कहीं अधिक कम हैं, जिनमें स्वर्ग प्राप्त करने की याचना की गयी हो अर्थात् अधिकाँश रूप से स्तुति एवं आशीर्वाद दोनों भिन्न–भिन्न मन्त्रों में ही प्रयुक्त हुए हैं। इसी क्रम में उल्लेखनीय यह भी है कि ऐसे मन्त्रों की

संख्या तो इससे भी कहीं कम है, जिनमें वैदिक ऋषि ने देवताओं से स्वर्ग प्राप्त करने के विषय में याचना की हो।

विशेष–(i) इससे वेदों में स्वर्ग प्राप्ति के विषय में अभिलाषा की न्यूनता की अभिव्यक्ति हुई है, क्योंकि यहाँ पर धन, पुत्र–पौत्रादि की कामना अधिक की गयी है।

(ii) वेदों से अभिप्राय सम्पूर्ण वृहद्देवता में ऋग्वेद से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इसी वेद के मन्त्रों को आधार बनाकर, इस ग्रन्थ का प्रणयन किया गया है।

अवतरणिका– इसके बाद देवताओं की भावनाओं के विषय में उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

स्तुवन्तं वेद सर्वोऽयम् अर्थयत्येष मामिति।
स्तौतीत्यर्थं ब्रुवन्तं च सार्थं मामेष पश्यति।।9।।

अन्वय– सर्वः स्तुवन्तम् वेद, स्तौति अयम् एषः माम् अर्थयति, इति, इत्यर्थम् ब्रुवन्तम् च एषः माम् सार्थम् पश्यति।।9।।

अनुवाद– सभी देवता अपनी स्तुति करने वाले के विषय में जान जाते हैं कि स्तुति करके यह हमसे क्या आकांक्षा कर रहा है? इसी प्रकार, वे यह भी समझ लेते हैं कि स्तुति करने वाला, यह 'स्तौता' हमें जिस दृष्टि से देख रहा है, हम उस वस्तु को प्रदान करने में समर्थ हैं या नहीं।।9।।

'चन्द्रिका'–आशय है कि जिसप्रकार लोक में हम किसी वस्तु की अभिलाषा मन में रखकर, व्यक्ति विशेष की स्तुति या प्रशंसा करते हैं, तो वह सामर्थ्यशाली व्यक्ति इस बात को समझ लेता है कि याचना करने वाला हमसे क्या चाहता है, जबकि याचना करने वाला व्यक्ति भी इस बात से सुपरिचित होता है कि मैं जिस अपने अभीष्ट की याचना कर रहा हूँ, उसे देने में यह व्यक्ति समर्थ है अथवा नहीं।

ठीक इसप्रकार वेद मन्त्रों में जिस देवता की स्तुति वैदिक ऋषि करते हैं, वह देवता स्तोता की इस बात से भलीप्रकार परिचित होता है कि स्तुति करने वाला मुझसे क्या अभिलाषा करके मेरी स्तुति कर रहा है, इसीप्रकार ऋषि भी इस बात को भलीभाँति जानता है कि इस

देवता से जो कुछ मैं माँग रहा हूँ, उसे यह देने में समर्थ है या नहीं, क्योंकि इस विषय में भलीप्रकार सोच–विचार कर ही वह देवता विशेष की स्तुति करता है।

विशेष–(i) प्रस्तुत बात मनोविज्ञान पर आधारित है, क्योंकि जिस प्रकार देवता स्तुति करने वाले लोगों के मन के अभिप्राय को जानता है, वैसे ही धनाढ्य दाता व्यक्ति भी अपने प्रशंसक की बात को समझ लेता है, तदनुसार ही वह उसे फल प्रदान करता है।

(ii) अभिप्राय है कि कामना को पूर्ण करने में समर्थ की स्तुति की जाती है, यदि कोई देवता या राजा कामना–विशेष को पूरा करने में समर्थ न हो तो उससे उसप्रकार की याचना नहीं की जाती है।

अवतरणिका– इसके बाद आचार्य शौनक तत्त्वदर्शी ऋषियों के विषय में स्तुति एवं आशीष की दृष्टि से कहते हैं कि–

स्तुवद्भिर्वा ब्रुवद्भिर्वा ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
भवत्युभयमेवोक्तम् उभयं ह्यर्थतः समम्।।10।।

अन्वय– तत्त्व–दर्शिभिः ऋषिभिः स्तुवद्भिः वा, ब्रुवद्भिः वा, उभयम् एव उक्तम्, हि अर्थतः उभयम् समम् भवति।।10।।

अनुवाद– तत्त्वदर्शी ऋषिगण स्तुति कर रहे हो या फिर आकांक्षा व्यक्त कर रहे हों, उनके द्वारा कही गयी दोनों बातें घटित हो जाती हैं, क्योंकि तात्पर्य की दृष्टि से ये दोनों समान ही होते हैं।।10।।

'चन्द्रिका'– तत्त्व को भलीप्रकार जानने वाले वैदिक ऋषिगण भले ही देवताओं की स्तुति करें या फिर आशीर्वाद की कामना करें, उनके द्वारा मन्त्रों में इन दोनों ही बातों की अभिव्यक्ति हो जाती है, क्योंकि सूक्ष्मदृष्टि से विचार करने पर स्तुति एवं आशीष इन दोनों का तात्पर्य तो समान ही होता है। वस्तुतः देवता विशेष की स्तुति करने पर भी वही प्राप्त होता है, जिसका स्तोता अभिलाषी होता है जबकि आशीष के माध्यम से भी उसे मनचाही वस्तु धन, पुत्र, पौत्रादि की ही प्राप्ति होती है, अतः फल की दृष्टि से ये दोनों ही समान हैं।

विशेष–(i) यहाँ पर स्तुति एवं आशीष दोनों को तात्पर्य की दृष्टि से समान कहा है।

(ii) वैदिक ऋषियों को तत्त्वदर्शी कहकर, उनके ज्ञान, योग्यता एवं सामर्थ्य की प्रशंसा की गयी है।

अवतरणिका– इसके पश्चात् ग्रन्थकार मन्त्रों में प्रयुक्त एकाधिक देवताओं में से मुख्य देवता को पहचानने के प्रकार का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

प्रत्यक्षं देवता नाम यस्मिन्मन्त्रेऽभिधीयते।
तामेव देवतां विद्यान्मन्त्रे लक्षणसंपदा।।11।।

अन्वय–यस्मिन् मन्त्रे देवता नाम प्रत्यक्षम् अभिधीयते, मन्त्रे लक्षण–संपदा ताम् एव देवताम् विद्यात्।।11।।

अनुवाद– जिस मन्त्र में देवता का नाम प्रत्यक्षरूप से कहा जाता है, उस मन्त्र में लक्षणों के अनुरूप उसको ही 'देवता' मानना चाहिए।।11।।

'चन्द्रिका'– स्तुति या आशीष की कामना दो प्रकार से की जाती है, (क) प्रत्यक्षरूप से (ख) अप्रत्यक्षरूप से। प्रत्यक्षरूप से करने पर हम मध्यम पुरुष का प्रयोग करते हुए अपनी बात कहते हैं, जबकि अप्रत्यक्ष रूप से कहने पर अन्य पुरुष का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर ग्रन्थकार का अभिप्राय है कि यदि किसी मन्त्र विशेष में देवता का नाम या सम्बोधन मध्यम पुरुष में होता है तो एक ही मन्त्र में एकाधिक देवताओं का उल्लेख होने पर, उसी को मन्त्र का देवता समझना चाहिए, जिसके लिए मध्यम पुरुष में सम्बोधन किया गया है। मन्त्र का देवता निर्धारण करते हुए दूसरी बात हमें यह भी देखनी चाहिए कि क्या मन्त्र में देवता विशेष के लक्षणों के विषय में भी कुछ कहा गया है या नहीं।

विशेष–(i) मन्त्र में देवता के निर्धारण के विषय में दो बातों का विशेषरूप से उल्लेख किया गया है, **प्रथम,** देवता का मध्यम पुरुष में प्रयोग करके प्रत्यक्ष स्तुति या आशीष की कामना करना, **द्वितीय,** मन्त्र में उस प्रधान देवता के लक्षणों का कथन।

(ii) इस विषय में निरुक्तकार आचार्य यास्क (7/2) का मन्तव्य भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है– 'प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगास्, त्वम् इति, चैतेन सर्वनाम्ना।'

(iii) प्रस्तुत श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–3) **मन्त्र में देवता का निर्धारण**

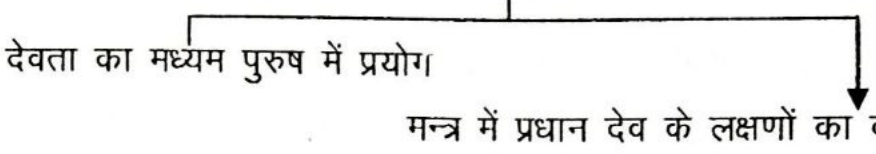

(3) ऋग्वेद के सूक्तों के विविध प्रकार

अवतरणिका– इसप्रकार मन्त्रों में मुख्य देवता के निर्धारण के विषय में नियमों का उल्लेख करने के बाद, ग्रन्थकार ऋग्वेद के मन्त्रों में 'नामादि' की दृष्टि से देवता के निर्धारण की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि–

तस्मात्तु देवतां नाम्ना मन्त्रे मन्त्रे प्रयोगवित्।
बहुत्वमभिधानां च प्रयत्नेनोपलक्षयेत्।।12।।

अन्वय– तस्मात् तु प्रयोगवित् मन्त्रे–मन्त्रे देवताम् नाम्ना च बहुत्वम् अभिधानाम् प्रयत्नेन उपलक्षयेत्।।12।।

अनुवाद– इसलिए मन्त्रों में देवों के प्रयोग से परिचित व्यक्ति को चाहिए कि वह देवों के नाम एवं उनकी बहुत सी उपाधियों के द्वारा प्रत्येक मन्त्र में स्थित मुख्य देवता को प्रयत्नपूर्वक देखे।।12।।

'चन्द्रिका'– वेदों का अध्ययन करने वाले तथा उनका देवकर्म में नियोजन करने वाले व्यक्ति का परम कर्तव्य है कि वह मन्त्रों का प्रयोग करने से पहले मन्त्र में प्रयुक्त एकाधिक देवों के होने पर, उनके नाम तथा उनकी विविध उपाधियों आदि को दृष्टि में रखते हुए, प्रयत्न पूर्वक मुख्य देवता को पहचानने को प्रयास करे, जिससे मन्त्र का सही देवकर्म में नियोजन करने से उससे अपेक्षित फल की प्राप्ति हो सके।

विशेष–(i) मन्त्र में मुख्य देवता को पहचानने के लिए दो माध्यमों का उल्लेख किया गया है, **प्रथम**, देवता के नाम तथा **द्वितीय**, उनके लिए प्रयुक्त विविध उपाधि अर्थात् कर्मादि।

अवतरणिका– इसप्रकार मुख्य देवता के निर्णय की विधि का उल्लेख करने के बाद, ग्रन्थकार 'सूक्त' को परिभाषित करते हैं–

सम्पूर्णमृषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते।
दृश्यन्ते देवता यस्मिन्नेकस्मिन् बहुषु द्वयोः।।13।।

अन्वय–सम्पूर्णम् ऋषि–वाक्यम् तु सूक्तम् इति अभिधीयते, यस्मिन् एकस्मिन्, द्वयोः, बहुषु देवताः दृश्यन्ते।।13।।

अनुवाद– ऋषि के सम्पूर्ण वाक्य को 'सूक्त' संज्ञा प्रदान की जाती है, इनके एक, दो या अनेक मन्त्रों में एक से अधिक देवता भी दृष्टिगोचर होते हैं।।13।।

'चन्द्रिका'– तत्त्वदर्शी वैदिक ऋषि मन्त्रों के दर्शन करते हैं, जो वाक्यरूप में विद्यमान होते हैं, इसलिए ऋषि द्वारा द्रष्ट मन्त्र के सम्पूर्ण वाक्य को **'सूक्त संज्ञा'** प्रदान करने की बात की गयी है, भले ही उसके एक, दो या फिर अनेक मन्त्रों में एकाधिक देवताओं के नामों का भी उल्लेख क्यों न किया गया हो।

विशेष–(i) सामान्यरूप से मन्त्रों के समूह को 'सूक्त' कहते हैं, जिनकी संख्या कम या अधिक दोनों प्रकार की सम्भव है, किन्तु ग्रन्थकार ने यहाँ पर ऋषि विशेष द्वारा द्रष्ट मन्त्र के सम्पूर्ण वाक्यों को 'सूक्त' संज्ञा प्रदान की है।

(ii) अभिप्राय है कि सूक्त के मन्त्रों में एकाधिक देवों के नामों का उल्लेख होने पर भी एक ही ऋषि द्वारा द्रष्ट सम्पूर्ण वाक्य 'सूक्त' संज्ञक ही होंगे।

(iii) एक, दो या बहुत से मन्त्रों में एकाधिक देवों के नामों के उल्लेख की सम्भावना को स्वीकार किया है।

अवतरणिका– इसके बाद ग्रन्थकार 'ऋषि–सूक्त' को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि–

देवतार्षार्थछन्दस्तो वैविध्यं च प्रजायते।

ऋषिसूक्तं तु यावन्ति सूक्तान्येकस्य वै स्तुतिः।।14।।

अन्वय– देवता–आर्ष–अर्थ–छन्दस्तः च वैविध्यम् प्रजायते, तु यावन्ति सूक्तानि एकस्य वै स्तुतिः, ऋषि–सूक्तम् (कथ्यते)।।14।।

अनुवाद– देवता, आर्ष, विषयवस्तु तथा छन्द की दृष्टि से सूक्तों में विविधता उत्पन्न हो जाती है, इसप्रकार के सभी सूक्तों को, जो ऋषि विशेष की स्तुतिरूप में प्रकट हुए हैं, ऋषि–सूक्त कहते हैं।।14।

'चन्द्रिका'– देवता, ऋषि, मन्त्र में प्रतिपादित विषयवस्तु तथा छन्द, इन चार दृष्टियों से वेद के मन्त्रों में विविधता की स्थिति बनती है, इसकारण इस प्रकार के सभी सूक्तों को, जो ऋषिविशेष की स्तुतिरूप में प्रकट हुए हैं, **'ऋषिसूक्त'** संज्ञा प्रदान की गयी है।

अर्थात् मन्त्रों के वैविध्य का आधार **देवता, ऋषि, विषयवस्तु** तथा **छन्द** इन चार बातों को बताया गया है, भले ही मन्त्रों में प्रयुक्त इन चारों बातों की दृष्टि से विविधता क्यों न विद्यमान हो, किन्तु एक ही ऋषि के द्वारा की गयी स्तुति या देखे गए मन्त्रों के आधार पर, इस मन्त्र–समूह को 'ऋषिसूक्त' कहा जाएगा।

विशेष–(i) यहाँ 'सूक्त' पद वस्तुतः मन्त्र अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(ii) इसके अतिरिक्त 'वै' निपात यहाँ 'निश्चय' अर्थ की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त हुआ है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–4) **वेदमन्त्र वैविध्य निर्धारण**

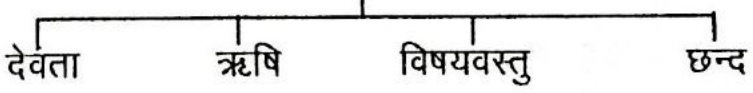

अवतरणिका– इसी क्रम में ग्रन्थकार **'अर्थसूक्त'** की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि–

श्रूयन्ते तानि सर्वाणि ऋषेः सूक्तं हि तस्य तत्।
यावदर्थसमाप्तिः स्याद् अर्थसूक्तं वदन्ति तत्।।15।।

अन्वय– हि तानि सर्वाणि ऋषेः सूक्तम् श्रूयन्ते, तत् तस्य यावत् अर्थ–समाप्तिः स्यात्, तत् अर्थ–सूक्तम् वदन्ति।।15।।

अनुवाद– वस्तुतः ऐसे सभी सूक्त मिलकर उसी ऋषि के सूक्त होते हैं, किन्तु जहाँ तक एक विषय पूर्ण होता है, उसे (विद्वान् लोग) 'अर्थ–सूक्त' कहते हैं।।15।।

'चन्द्रिका'– यह बात सही है कि एक ही ऋषि की स्तुति के रूप में प्रकट हुए, सूक्त **ऋषिसूक्त** होते हैं, किन्तु यह भी सत्य है कि यदि मन्त्रों के उस समूह में एक ही विषय वर्णित हो, तो उसे यहाँ **अर्थ–सूक्त** संज्ञा प्रदान की गयी है।

विशेष–(i) ऋषिसूक्त के साथ–साथ अर्थसूक्त को भी परिभाषित किया गया है, जिसमें अनेक ऋचाओं में यदि एक ही विषय पूर्ण हो तो उसे अर्थसूक्त कहते हैं।

अवतरणिका– इसप्रकार ऋषिसूक्त, अर्थसूक्त को स्पष्ट करने के बाद, ग्रन्थकार 'छन्दःसूक्त' के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं–

समानछन्दसो याः स्युः तच्छन्दःसूक्तमुच्यते।
वैविध्यमेवं सूक्तानाम् इह विद्याद्यथातथम्।।16।।

अन्वय– याः समान–छन्दसः स्युः, तत् 'छन्दः–सूक्तम्' उच्यते, एवम् सूक्तानाम् इह यथातथम् वैविध्यम् विद्यात्।।16।।

अनुवाद– जिन ऋचाओं का छन्द एक जैसा होता है, उन्हें छन्दः सूक्त कहते हैं, सभी लोगों को इसप्रकार सूक्तों की वास्तविक विविधता को समझना चाहिए।।16।।

'चन्द्रिका'– यदि कुछ मन्त्रों के समूह में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ हो तो उसे **'छन्दःसूक्त'** की संज्ञा प्रदान की गयी है, साथ ही, ग्रन्थकार का यह भी मानना है कि वेद–मन्त्रों का प्रयोग करने में निपुण वेदपाठी तथा कर्मकाण्डी लोगों को इसप्रकार के सूक्तों को वेद के विषय में सभी प्रकार की विविधताओं को भलीप्रकार समझने के बाद ही उनका उचित स्थान पर प्रयोग करना चाहिए।

विशेष–(i) वेद–मन्त्रों के प्रयोग में छन्दों का भी विशेष महत्त्व माना गया है, क्योंकि विद्वानों ने देव–विशेष की स्तुति, आशीष आदि में भी विशिष्ट छन्दों के निर्धारण अथवा प्रयोग को मान्यता प्रदान की है, जैसे इन्द्र की स्तुति के लिए त्रिष्टुप् छन्द को प्रमुख माना गया है।

(ii) छन्दों के महत्त्व को छन्दःशास्त्र में स्वीकार किया गया है।

(4) सूक्त, मन्त्र एवं नैपातिक देवता

अवतरणिका– इसके बाद ग्रन्थकार सूक्त–देव, मन्त्र–देव तथा नैपातिक देवताओं के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

देवतानामभिधेयानि मन्त्रेषु त्रिविधानि तु।
सूक्तभाञ्ज्यथवाग्भाञ्जि तथा नैपातिकानि तु।।17।।

अन्वय– तु मन्त्रेषु देवतानाम् अभिधेयानि त्रिविधानि, सूक्त–भाञ्जि अथवा ऋग्भाञ्जि तथा नैपातिकानि तु।।17।।

अनुवाद– वास्तव में मन्त्रों में देवताओं के नामों का उल्लेख करने के तीन प्रकार होते हैं, प्रथम, **जिन देवों का सम्पूर्ण सूक्त में उल्लेख होता है,** द्वितीय, **जो केवल एक मन्त्र में प्रयुक्त होते हैं,** तृतीय, **जिनका उल्लेख केवल 'नैपातिकरूप' में किया जाता है।।17।।**

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने वेदमन्त्रों में देवताओं के नामों के उल्लेख के तीन प्रकारों का कथन किया है, (1) जिन मन्त्रों के समूह अर्थात् सूक्त में किसी देव विशेष का उल्लेख किया गया हो। (2) मन्त्रों के समूह में से किसी मन्त्र विशेष में ही देव–विशेष का कथन हुआ हो। (3) इसके अतिरिक्त ऐसे मन्त्र जिनमें देवताओं का गौणरूप में प्रयोग किया गया हो, उल्लेख के इस 'प्रकार' को **नैपातिक** कहा गया है तथा जिन देवों का इसप्रकार कथन किया गया है, उन्हें **नैपातिक देवता** कहते हैं, इसलिए उक्त बातों को भलीप्रकार जानने के बाद ही कर्म में मन्त्रों का प्रयोग करना उचित माना गया है।

विशेष–(i) सम्पूर्ण सूक्त में एक ही देवता के उल्लेख के विषय में नियम का कथन निरुक्तकार (7/13, 10/42) ने भी किया है।

(ii) इसीप्रकार उन्होंने (1/20, 7/18) ही नैपातिक देवताओं के विषय में भी व्यवस्था प्रदान की है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–5) मन्त्रों में देवों के उल्लेख के प्रकार

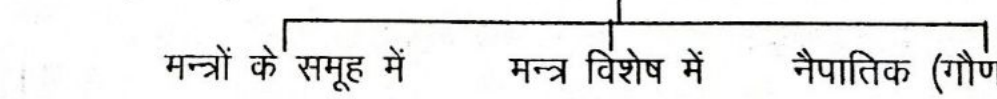

अवतरणिका– इसी विषय में अर्थात् ऋचाओं में प्रयुक्त होने वाले देवों के नामोल्लेख की दूसरी व्यवस्था के विषय में उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

सूक्तभाञ्जि भजन्ते वै सूक्तान्यृग्भाञ्जि वै ऋचः।
मन्त्रैऽन्यदैवतेऽन्यानि निगद्यन्तेऽत्र कानिचित्।।18।।

अन्वय– वै सूक्तानि सूक्त–भाञ्जि भजन्ते, ऋचः ऋक्–भाञ्जि वै, मन्त्रैः अन्य–दैवते अत्र कानिचित् अन्यानि निगद्यन्ते।।18।।

अनुवाद– वस्तुतः सम्पूर्ण सूक्त में आने वाले देवता सूक्त–देवता कहलाते हैं तथा एक ऋचा मात्र में आने वाले उसी मन्त्र के देवता होते हैं। देवता विशेष का सम्बोधन मन्त्र में कुछ दूसरे देवों के नामों के साथ भी किया जा सकता है।।18।।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में मन्त्रों में किए गए देवताओं के नामोल्लेख के आधार पर देवों के तीन प्रकारों का कथन किया गया है, **प्रथम**, ऐसे देवता, जिनके नामों का उल्लेख एकाधिक मन्त्रों अर्थात् सूक्त में किया गया हो, उन्हें **सूक्त–देवता** कहते हैं और **द्वितीय**, यदि किसी ऋचा विशेष में ही देवता का कथन किया गया है तो उसे यहाँ **मन्त्र–देवता** संज्ञा प्रदान की गयी है, जबकि **तीसरे प्रकार** के देवता वे हैं, जिनके नाम का प्रयोग दूसरे कुछ देवों के साथ किया गया हो, जिन्हें पूर्व में **नैपातिक–देव** कहा गया है।

विशेष–(i) 'वै' निपात का प्रयोग 'निश्चय' अर्थ में हुआ है।

(ii) उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व ऋचा में गौणरूप से प्रयुक्त देवो को 'नैपातिक संज्ञा' प्रदान की गयी है।

(iii) मन्त्रों में नामोल्लेख के आधार पर देवों की तीन श्रेणियों का कथन किया गया है।

अवतरणिका– नैपातिकादि देवों को स्पष्ट करते हुए, ग्रन्थकार इसी क्रम में फिर से उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

सालोक्यात्साहचर्याद्वा तानि नैपातिकानि तु।
तस्मादबहुप्रकारेऽपि सूक्ते स्यात्सूक्तभागिनी।।19।।

अन्वय– तानि सालोक्यात् साहचर्यात् वा नैपातिकानि तु, तस्मात् बहु–प्रकारे अपि सूक्ते, सूक्त–भागिनी स्यात्।।19।।

अनुवाद– (जिन देवों का ऋचाओं में उल्लेख किया गया है) **वे सभी एक ही लोक या परम्परा से सम्बद्ध हो सकते हैं, किन्तु फिर भी ऐसे देवों का उल्लेख केवल 'नैपातिक' होता है, जबकि विविध प्रकृति वाले सूक्त का पूर्णरूप से एक देवता भी हो सकता है।।19।।**

'चन्द्रिका'– वस्तुस्थिति यह है कि वेद में मन्त्रों में जिन देवताओं के नामों का उल्लेख किया गया है, वे एक ही लोक या परम्परा से सम्बद्ध हो सकते हैं, किन्तु ऐसा होने पर भी उनमें से जो देवता गौण होते हैं, उन्हें तो **नैपातिक संज्ञा** ही दी गयी है, भले ही वे एकाधिक क्यों न हों, जबकि विविध प्रकृति वाले एक सूक्त का सम्पूर्णरूप से एक ही देवता भी हो सकता है, किन्तु वह तो मुख्यदेव की श्रेणी में ही आएगा।

विशेष–(i) वस्तुतः देवों की तीन श्रेणियाँ मानी गयी हैं, पृथिवी स्थानी देवता **जैसे**– पार्थिव अग्नि। अन्तरिक्ष स्थानी देवता **जैसे**– इन्द्र एवं वायु तृतीय द्युलोक स्थानी देवता, **जैसे**– सूर्य या प्रजापति।

अवतरणिका– इसके बाद ग्रन्थकार अनादिष्ट देवता वाले मन्त्रों के विषय में व्यवस्था का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

देवता तद्यथा सूक्तम् अविशेष्यं प्रतीयते।
भिन्ने सूक्ते वदेदेव देवतामिह लिङ्गतः।।20।।

अन्वय– भिन्ने सूक्ते देवता यथा सूक्तम् अविशेष्यम् प्रतीयते, तत् एव इह लिङ्गतः देवताम् वदेत्।।20।।

अनुवाद– इसलिए विभिन्न प्रकृति वाले एक सूक्त का भी सम्पूर्णरूप से एक ही देवता हो सकता है, किन्तु जब सूक्त विभिन्न भागों में विभक्त हो, तो उस स्थिति में उसमें दिखायी देने वाले विशिष्ट लक्षणों के आधार पर ही उसमें निहित देवता को समझना चाहिए।।20।।

'चन्द्रिका'– यदि अलग–अलग प्रकृति वाले मन्त्रों का एक ही सूक्त में प्रयोग हुआ हो तो उन सभी का सम्पूर्णरूप से एक ही देवता

सम्भव होता है, किन्तु यदि यही सूक्त अलग–अलग भागों में विभाजित हो, तो तब उस मन्त्र में दिखायी देने वाले विशिष्ट लक्षणों के आधार पर ही देवता का निर्धारण करना उचित है।

विशेष–(i) ऐसा प्रतीत होता है कि यह बात अनिश्चित प्रकृति वाले सूक्तों के विषय में की गयी है, जिनमें किसी भी देव–विशेष के नाम का कथन नहीं होता है।

(ii) निरुक्तकार (7/4) ने ऐसे मन्त्रों के लिए **अनादिष्ट देवत** पद का प्रयोग किया है।

(iii) सर्वानुक्रमणीकार (10/18) ने भी यही बात कही है, उनके अनुसार सांस्कारिक दृष्टि से अलग–अलग प्रयुक्त मन्त्रों में देवता को उसी मन्त्र में निहित मानना चाहिए (1/139)।

अवतरणिका– इसप्रकार देवता निर्धारण विषयक सिद्धान्तों का उल्लेख करने के बाद, ग्रन्थकार **दैवत निर्णय** की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि–

तत्र तत्र यथावच्च मन्त्रान्कर्मसु योजयेत्।
देवतायाः परिज्ञानात् तद्धि कर्म समृध्यते।।21।।

अन्वय– तत्र–तत्र देवतायाः परिज्ञानात् यथावत् च मन्त्रान् कर्मसु योजयेत्, हि तत् कर्म समृध्यते।।21।।

अनुवाद– किन्तु प्रत्येक स्थिति में लोगों को देवता का निर्णय करके ही मन्त्रों को तत्सम्बन्धी कर्मों के साथ सम्बद्ध करना चाहिए, क्योंकि देवता के इसप्रकार के ज्ञान द्वारा उत्पन्न होने वाला कर्म ही पूर्णरूप से सफल होता है।।21।।

'चन्द्रिका'– यज्ञकर्मादि में मन्त्रों का प्रयोग करने से पूर्व वेदपाठी ब्राह्मण अथवा याज्ञिक की स्थिति भले ही कुछ भी क्यों न हो, मन्त्र के देवता के विषय में जानकारी प्राप्त करने के बाद ही उसे उससे सम्बन्धित कार्य के साथ सम्बद्ध करना चाहिए और इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि देवता का ज्ञान प्राप्त करने के बाद नियोजित किया गया मन्त्र ही **कर्म के फल** को प्रदान करने में प्रभावशाली हो पाता है।

विशेष– (i) मन्त्र को यज्ञकर्म में प्रयोग करने से पूर्व उसके देवता को जानने की आवश्यकता का उल्लेख किया गया है, तभी वह क्रिया फलवती होती है, क्योंकि इससे हमारे मस्तिष्क में उस देवता विशेष की छवि बनी रहती है, जिसके लिए हम 'कर्म' कर रहे हैं।

(ii) ग्रन्थकार ने इसी अभिप्राय को किञ्चित् भिन्न प्रकार से दूसरे भी अनेक स्थलों पर अभिव्यक्ति प्रदान की है (1/4, 118, 2/20, 8/124)

(5) नामों की उत्पत्ति

अवतरणिका– इसके बाद ग्रन्थकार मन्त्र में प्रयुक्त देवता को पहचानने के लिए दूसरी शैली का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

आद्यन्तयोस्तु सूक्तानां प्रसङ्गपरिकीर्तनात्।
स्तोतृभिर्देवता नाम्ना उपेक्षेतेह मन्त्रवित्।।22।।

अन्वय– तु स्तोतृभिः सूक्तानाम् आद्यन्तयोः प्रसङ्ग–परिकीर्तनात् मन्त्रवित् देवता नाम्ना इह उपेक्षेत।।22।।

अनुवाद– क्योंकि स्तुति करने वाले ऋषि सूक्तों के आरम्भ और अन्त में ही देवों के नाम तथा प्रसङ्ग का उल्लेख करते हैं, इसलिए मन्त्रों का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति को देवताओं के नाम को इन्हीं स्थलों पर भलीप्रकार देखना चाहिए।।22।।

'चन्द्रिका'– वस्तुस्थिति यह है कि देवताओं की स्तुति करने वाले तत्त्वदर्शी ऋषि, मन्त्र के आरम्भ अथवा अन्त में ही देवताओं के नामों तथा उनके प्रसङ्गों के विषय में कथन करते हैं, इसलिए मन्त्रों में देवता को जानने की जिज्ञासा वाले मन्त्र–ज्ञाता व्यक्ति को देवों के नामों को उन–उन स्थलों पर अत्यधिक सूक्ष्मतापूर्वक देखना चाहिए, जिससे वे मन्त्र के देवता से भलीप्रकार परिचित हो सकें।

विशेष–(i) उपेक्षेत (उप+√ईक्ष्, नैकट्येन समीपं गत्वा पश्येत्, इति) का अभिप्राय यहाँ 'गहनता' से देखने से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) सूक्त से अभिप्राय यहाँ मन्त्रों का समूह तथा एक मन्त्र दोनों से ही ग्रहण किया जा सकता है।

उद्धृत किया जा सकता है अर्थात् इनके उदाहरण हमें ब्राह्मण ग्रन्थ एवं कल्पसूत्र पर्यन्त मिल जाते हैं।

विशेष–(i) तत्त्वदर्शी वैदिक ऋषि वेदों के मन्त्रों में जिन ऋचाओं, अर्द्ध ऋचाओं तथा पदों का प्रयोग करते हैं, इनका उद्देश्य वस्तुतः अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करना ही है, इस दृष्टि से इन्हें विचाराभिव्यक्ति का माध्यम भी कहा जा सकता है।

(9) संज्ञा एवं क्रिया–परिभाषा

अवतरणिका– इसप्रकार प्रसङ्ग प्राप्त होने पर ग्रन्थकार 'संज्ञा' को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि–

शब्देनोच्चरितेनेह येन द्रव्यं प्रतीयते।
तदक्षरविधौ युक्तं नामेत्याहुर्मनीषिणः।।42।।

अन्वय– इह येन उच्चरितेन शब्देन द्रव्यम् प्रतीयते, तत् अक्षर–विधौ युक्तम् नाम, इति मनीषिणः आहुः।।42।।

अनुवाद– कोई भी उच्चारण किया गया शब्द, जिससे किसी 'द्रव्य' का बोध हो, जब उच्चारण के अनुकूल अक्षरों के विन्यास से युक्त होता है, उसी को विद्वान् लोग 'संज्ञा' कहते हैं।।42।।

'चन्द्रिका'– वेद मन्त्रों में प्रयुक्त होने वाले **संज्ञा** पदों को परिभाषित करते हुए ग्रन्थकार ने इसमें कुल तीन बातों का उल्लेख किया है (1) जिस शब्द का उच्चारण किया गया हो, (2) जिससे किसी द्रव्य का बोध हो रहा हो, (3) जो उच्चारण के अनुकूल अक्षरों के विन्यास से युक्त हो, इसी को विद्वानों ने 'संज्ञा' कहा है।

संक्षेप में, उच्चारण के अनुकूल अक्षरों के विन्यास से युक्त, उच्चारण किए गए, वर्णों के समूह को **संज्ञा** कहते हैं, जिसका उच्चारण किया गया हो, जो द्रव्य विशेष का बोध करने वाला भी हो।

विशेष–(i) उक्त श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इस प्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–16)

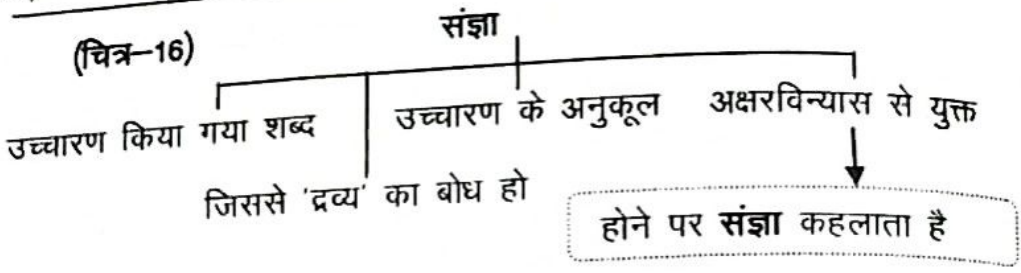

(ii) मन्त्र में प्रयुक्त में मनीषीगण से अभिप्राय वैयाकरणों से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि व्याकरण शास्त्र में ही इस विषय में सर्वाधिक चर्चा की गयी है।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार 'संज्ञा' की ही दूसरी परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

अष्टौ यत्र प्रयुज्यन्ते नानार्थेषु विभक्तयः।
तन्नाम कवयः प्राहुर् भेदे वचनलिङ्गयोः।।43।।

अन्वय– यत्र नाना अर्थेषु अष्टौ विभक्तयः प्रयुज्यन्ते, तत् वचन–लिङ्गयोः भेदे नाम, कवयः (संज्ञा) प्राहुः।।43।।

अनुवाद– जिसमें अनेक अर्थों में आठ विभक्तियों का प्रयोग किया जाता है और उसमें लिङ्ग एवं वचन का भी भेद होता है, उसे कविगण 'संज्ञा' कहते हैं।।43।।

'चन्द्रिका'– फिर से संज्ञा की परिभाषा करते हुए ग्रन्थकार इसके लिए दो शर्तों का उल्लेख करते हैं, (1) अनेक अर्थों में कुल आठ विभक्तियों का प्रयोग होना और (2) उसमें लिङ्ग तथा वचन का भेद होना, तभी विद्वान् लोग (कवयः) उसे **संज्ञा** कहते हैं।

विशेष– (i) प्रस्तुत उक्त श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–17)

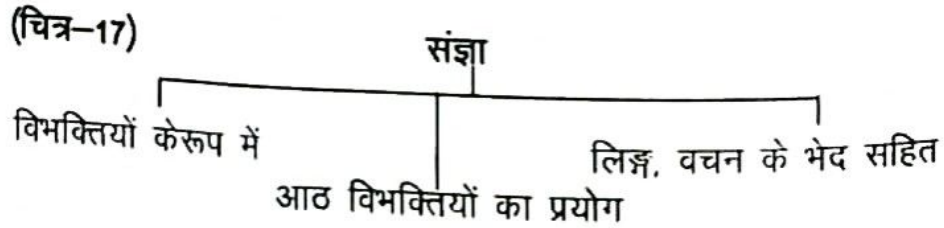

(ii) उल्लेखनीय है कि ग्रन्थकार ने यहाँ आठ विभक्तियों को मान्यता देते हुए सम्बोधन को भी विभक्ति स्वीकार किया है, जबकि वैयाकरणों ने केवल सात विभक्तियों को ही मान्यता प्रदान की है।

(iii) कवियों से अभिप्राय यहाँ ऋषियों या दूसरे विद्वानों से ग्रहण करना चाहिए।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार क्रिया अर्थात् **आख्यात** को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि–

क्रियासु बह्वीष्वभिसंश्रितो यः पूर्वापरीभूत इहैक एव।
क्रियाभिर्निर्वृत्तिवशेन सिद्ध आख्यातशब्देन तमर्थमाहुः।।44

अन्वय– बह्वीषु क्रियासु अभिसंश्रितः यः पूर्वापरीभूतः, इह एकः एव क्रियाभिः निर्वृत्ति–वशेन सिद्धः, तम् अर्थम् आख्यात–शब्देन आहुः।।44।।

अनुवाद– अनेक क्रियाओं से सम्बद्ध पूर्व या अपर रूप धारण करने पर भी, एक होते हुए यदि कोई शब्द, क्रिया की निर्वृत्ति द्वारा सिद्ध होता है, तो उसे 'आख्यात' शब्द से कहते हैं।।44।।

'चन्द्रिका'– क्रिया को परिभाषित करते हुए ग्रन्थकार ने इसमें कुल दो विशेषताओं का कथन किया है (1) पूर्व या अपर रूप धारण करने पर भी यदि कोई शब्द अनेक क्रियाओं से सम्बद्ध हो (2) एक रूप में होते हुए, क्रिया की निवृत्ति के माध्यम से सिद्ध हो जाता हो तो ऐसे उस पद को विद्वानों द्वारा 'आख्यात' या क्रिया कहा गया है।

विशेष–(i) यह क्रिया भूत, भविष्य, वर्तमान आदि भेदों से अनेक प्रकार की हो सकती है।

(ii) आचार्य यास्क ने शब्दों के चार भेदों का उल्लेख किया है– नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात, जिनमें ग्रन्थकार ने नाम तथा क्रिया दोनों को ही यहाँ पर परिभाषित किया है।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार 'द्रव्य' के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

क्रियाभिर्निर्वृत्तिवशोपजातः

कृदन्तशब्दाभिहितो यदा स्यात्।
संख्याविभक्त्यव्ययलिङ्गयुक्तो
भावस्तदा द्रव्यमिवोपलक्ष्यः।।45।

अन्वय– क्रियाभिः निर्वृत्ति–वशोपजातः, कृदन्त–शब्द–अभिहितः, यदा संख्या–विभक्ति–अव्यय–लिङ्गयुक्तः भावः स्यात्, तदा (सः) द्रव्यम् इव उपलक्ष्यः।।45।

अनुवाद– जो भाव किसी क्रिया की निर्वृत्ति से उत्पन्न होता है तथा जो कृदन्त पद से कहा गया हो एवं जो संख्या, विभक्ति, अव्यय और लिङ्ग से संयुक्त रहे, उसे 'द्रव्य' समझना चाहिए।।45।।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में द्रव्य को परिभाषित करते हुए ग्रन्थकार ने इसकी तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है (क) किसी क्रिया की निर्वृत्ति से उत्पन्न होना (ख) कृदन्त के माध्यम से कहा जाना तथा (ग) संख्या, विभक्ति, अव्यय एवं लिङ्ग इन चारों से इसका संयुक्त होना, तभी वह द्रव्य की श्रेणी में आता है।

विशेष– (i) प्रस्तुत उक्त श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इस प्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–18)

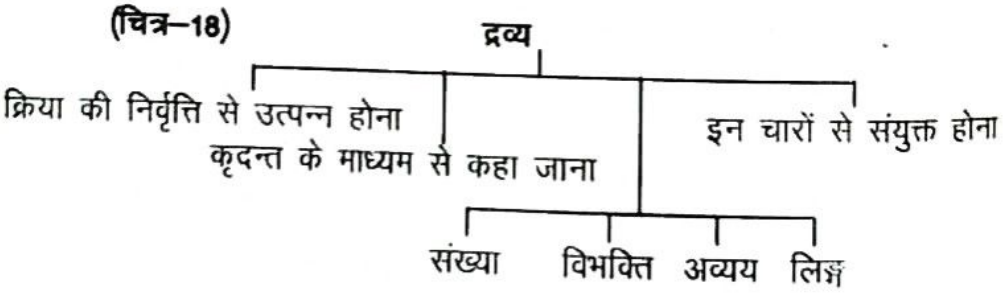

(ii) उल्लेखनीय है कि ग्रन्थकार ने 'द्रव्य' की परिभाषा न्याय वैशेषिक दर्शनों से सर्वथा भिन्न की है, जिससे तात्कालिक समय में विद्वत्परम्परा में 'द्रव्य' विषयक मान्यता का पता चलता है।

(10) मन्त्रों के उदाहरण

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार पूर्व में बताए गए मन्त्रों के विभिन्न प्रकारों के उदाहरणों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

(iii) सर्वप्रथम सूर्य की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादित करके, अग्नि को उसी का स्वरूप बताकर, यज्ञादि के माध्यम से उसी की पूजा करने की बात की गयी है, जो अप्रत्यक्षरूप से सूर्य की ही अर्चना है।

(iv) सभी प्राणियों के शरीरों में स्थित अग्नि, यज्ञाग्नि तथा सूर्य इन तीनों में अभिन्नता प्रतिपादित की गयी है।

(12) अग्नि के त्रिविध रूप – टिप्पणी

अवतरणिका– तत्पश्चात् पृथिवी लोक में अर्चित अग्नि के त्रिविध रूपों के विषय में उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

इहैष पवमानोऽग्निः मध्यमोऽग्निर्वनस्पतिः।
अमुष्मिन्नेव विप्रस्तु लोकेऽग्निः शुचिरुच्यते।।66।।

अन्वय–विप्रः तु इह एषः पवमानः अग्निः, मध्यमः वनस्पतिः अग्निः, अमुष्मिन् एव लोके शुचिः अग्निः उच्यते।।66।।

अनुवाद– पुरोहित गण तो यहाँ इस अग्नि को 'पवमान अग्नि', मध्य क्षेत्र में 'वनस्पति अग्नि', किन्तु इस दिव्यलोक में 'शुचि अग्नि' के नाम से पुकारते हैं।।66।।

'चन्द्रिका'– सभी लोकों को तीन भागों में विभाजित किया गया है, इनमें **प्रथम,** द्युलोक जो सर्वोपरि रूप से विद्यमान है, यहीं पर सूर्य चमकता है, **द्वितीय,** अन्तरिक्ष लोक इसी को **मध्य लोक** भी कहते हैं, इसे इन्द्र तथा वायु दोनों का स्थान माना गया है, जबकि **तृतीय,** पृथिवी लोक है, जिसमें सभी प्राणी निवास करते हैं, इन तीनों लोकों में ही सूर्य, अग्निरूप में विद्यमान रहता है, इसी अग्नि को पुरोहित लोग क्रमशः पवमान अग्नि, वनस्पति अग्नि तथा शुचि अग्नि के रूप में कहते हुए इसकी पूजा करते हैं।

विशेष–(i) उक्त श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–19) **पुरोहितों की दृष्टि में अग्नि के तीन प्रकार**

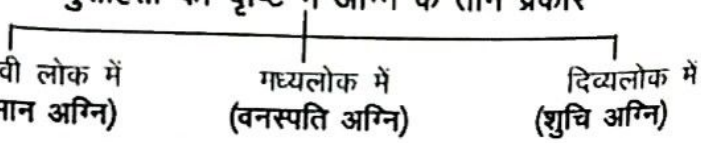

(ii)यहाँ प्रयुक्त 'विप्रः' पद से अभिप्राय 'पुरोहित' अथवा याज्ञिकों से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वे ही यज्ञ के माध्यम से विविधरूपों में अग्नि का अर्चन करते हैं।

(iii) 'वनस्पति' पद से यहाँ पेड़–पौधों से अभिप्राय ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि अथर्ववेद (5/24/2) में अग्नि को भी वनस्पति कहा गया है।

(iv) तैत्तिरीय संहिता (2/2/4/2) और पुराणों में भी अग्नि के तीन नामों पवमान, शुचि तथा पावक का उल्लेख किया गया है।

(v) बृहद्देवताकार ने अन्यत्र (7/61) अग्नि के भ्राताओं के नामों का कथन किया है–

वैश्वानरे गृहपतौ यविष्ठेऽग्नौ च पावके।
वषट्कारेण वृक्णेषु भ्रातृष्वग्नौ सहःसुते।।

अवतरणिका– इसप्रकार पुरोहितों द्वारा अग्नि के नामों के विषय में उल्लेख करने के बाद ग्रन्थकार **ऋषिगण द्वारा अग्नि के नामों** के विषय में कथन करते हैं कि–

इहाग्निभूतस्त्वृषिभिः लोके स्तुतिभिरीळितः।
जातवेदा स्तुतो मध्ये स्तुतो वैश्वानरो दिवि।।67।।

अन्वय– तु ऋषिभिः इह लोके अग्निभूतः स्तुतिभिः ईळितः, मध्ये जातवेदाः स्तुतः, दिवि वैश्वानरः स्तुतः।।67।।

अनुवाद– किन्तु ऋषियों द्वारा उसकी इस लोक में 'अग्नि' के रूप में अर्चना की गयी है, मध्यलोक में 'जातवेदस्' के रूप में स्तुति की गयी है, जबकि दिव्यलोक में 'वैश्वानर' के रूप में स्तुति की गयी है।।67।।

'चन्द्रिका'– त्रिविध अग्नि के नामकरण के विषय में वैदिक ऋषियों की मान्यता के विषय में उल्लेख करते हुए, उनके द्वारा इस लोक की अग्नि को 'अग्नि', मध्यलोक में स्थित अग्नि को 'जातवेदस्' तथा दिव्य लोक अर्थात् द्युलोक में विद्यमान अग्नि के लिए 'वैश्वानर' पदों का प्रयोग करते हुए स्तवन करने की बात की गयी है।

विशेष–(i) उक्त श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–20) **ऋषियों की दृष्टि में अग्नि के तीन प्रकार**

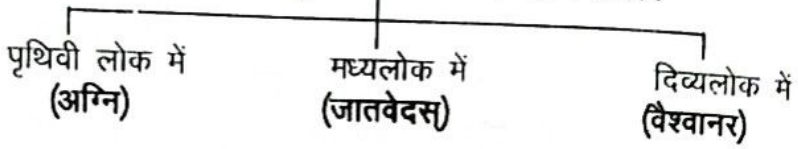

(ii) 'इळ्' धातु भी स्तुति अर्थ में ही प्रयुक्त होती है, इळ स्तुतौ।

(iii) अग्नि, जातवेदस् एवं वैश्वानर इस त्रयी का नैघण्टुक के दैवतकाण्ड में सबसे पहले उल्लेख किया गया है।

(iv) निरुक्तकार आचार्य यास्क (7/23) के अनुसार प्राचीन याज्ञिकों ने अग्नि वैश्वानर को आदित्य स्वीकार किया है, जबकि शाकपूणि के मत में 'पार्थिव अग्नि' ही वस्तुतः अग्नि वैश्वानर है।

(v) किन्तु अन्यत्र (7/31) यास्क भी दूसरे दृष्टिकोण से अधिक सहमत प्रतीत होते हैं।

(vi) बृहद्देवताकार ने भी सूर्य व वैश्वानर को एक ही माना है

सौर्यवैश्वानरीयं हि तत्सूक्तमिव दृश्यते।
ऋगर्धर्चोऽथवा पादो द्वृचो वा यदि वा तृचः।।2/17

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार इन्द्र की विशेषता का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

रसान् रश्मिभिरादाय वायुनायं गतः सह।
वर्षत्येव च यल्लोके तेनेन्द्र इति स स्मृतः।।68।।

अन्वय– यत् लोके रश्मिभिः रसान् आदाय, वायुना सह गतः अयम् वर्षति एव च, तेन सः 'इन्द्रः' इति, स्मृतः।।68।।

अनुवाद– क्योंकि इस संसार में अपनी किरणों से जलों को ग्रहण करके, वायु के साथ वह इसी लोक में वर्षा करता है, इसलिए वह 'इन्द्र' कहा गया है।।68।।

'चन्द्रिका'– ऋग्वेद में इन्द्र को वर्षा का देवता माना गया है, उसी बात की पुष्टि करते हुए, ग्रन्थकार इसे भी सूर्य का ही दूसरा

रूप मानकर कहते हैं कि यही सूर्य वस्तुतः अपनी किरणों के माध्यम से जलों को ग्रहण करने के बाद, वायु के सहयोग से उन जलों को फिर से इसी पृथिवीलोक में वृष्टिरूप में प्रदान कर देता है, इसलिए विद्वानों ने इसे 'इन्द्र' संज्ञा प्रदान की है।

विशेष–(i) 'सह' पद के योग में 'वायुना' पद में 'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(ii) इससे अग्रिम मन्त्र में ही ग्रन्थकार ने मध्यम लोक अर्थात् अन्तरिक्ष में, इन्द्र एवं वायु इन दोनों देवों के नामों का उल्लेख किया है, उसी को दृष्टि में रखते हुए यहाँ जलवृष्टि में वायु के सहयोग की बात कही गयी है।

(iii) ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर मरुतों को इन्द्र का सहयोगी तथा मित्र कहा गया है।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार तीनों लोकों के देवों के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अग्निरस्मिन्नथेन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेव च।
सूर्यो दिवीति विज्ञेयास्तिस्र एवेह देवताः।।69।।

अन्वय– अस्मिन् अग्निः, मध्यतः तु इन्द्रः वायुः एव च, अथ दिवि सूर्यः, इति, इह तिस्रः एव देवताः विज्ञेयाः।।69।।

अनुवाद– इस पृथिवी लोक में अग्नि, मध्य लोक में इन्द्र और वायु एवं दिव्य लोक में सूर्य, इसप्रकार इन तीनों लोकों में तीन ही देवताओं को समझना चाहिए।।69।।

'चन्द्रिका'– वेदों में केवल तीन ही लोकों की कल्पना की गयी है, **सर्वप्रथम** पृथिवीलोक, जिसमें सभी प्राणी निवास करते हैं, **द्वितीय,** अन्तरिक्षलोक, इसी को मध्यम लोक भी कहते हैं, **तृतीय,** द्युलोक यह सबसे ऊपर विद्यमान है, इन तीनों लोकों में ग्रन्थकार ने क्रमशः अग्नि, इन्द्र और वायु तथा दिव्य लोक में सूर्य की स्थिति का उल्लेख किया है, किन्तु मूलरूप से ये तीनों सूर्य के ही रूप हैं, यह बात पूर्व में प्रतिपादित की जा चुकी है।

विशेष–(i) प्रस्तुत उक्त श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इस प्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–21) **लोकत्रय में देवस्थिति**

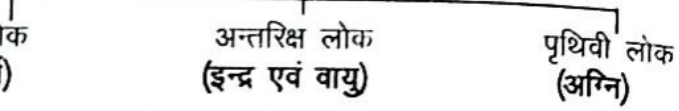

(ii) निरुक्तकार ने भी देवताओं की तीन श्रेणियों का ही उल्लेख किया है– तिस्र एव देवताः (निरुक्त 7/5)

(iii) इसी बात को सर्वानुक्रमणीकार एवं भाष्यकार षड्गुरुशिष्य ने भी स्वीकार किया है (सर्वानुक्रमणी 2/8)।

अवतरणिका– इसके बाद ग्रन्थकार देवताओं के विभिन्न नामों में उनके व्यवहार को कारण मानते हुए कहते हैं कि–

एतासामेव माहात्म्यान् नामान्यत्वं विधीयते।
तत्तत्स्थानविभागेन तत्र तत्रेह दृश्यते।।70।।

अन्वय– एतासाम् माहात्म्यान् नाम अन्यत्वम् एव विधीयते, तत्तत् स्थान–विभागेन तत्र–तत्र इह दृश्यते।।70।।

अनुवाद– इन देवताओं के माहात्म्य के कारण इनके लिए विभिन्न व्यवहारों को किया जाता है तथा इनके क्षेत्रों के विभाजन के अनुसार ही इनके नामों में विविधता दृष्टिगोचर होती है।।70।।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने देवताओं के विषय में प्रमुखरूप से तीन बातों का कथन किया है (1) देवों की महानता के कारण ही देवताओं में विभिन्न नामों का व्यवहार किया जाता है। (2) विधाता द्वारा देवों के कार्य–क्षेत्रों का विभाजन पूर्व में ही कर दिया गया है। (3) इसके अनुसार ही इन देवों के नामों में हमें विभिन्नता दिखायी देती है।

विशेष–(i) इससे पूर्व सूर्य की रश्मियों में विभिन्न देवों की स्थिति का उल्लेख ग्रन्थकार कर चुके हैं, इसलिए जो भी देवों की महिमा है, वह सभी सूर्य या प्रजापति की महिमा है।

(ii) देवों की उत्पत्ति के समय ही प्रजापति या सूर्य जैसी सर्वोत्कृष्ट शक्ति ने इनके कार्यक्षेत्रों का विभाजन भी कर दिया, इसके बाद ही उनके कार्य एवं व्यवहार के आधार पर देवों का नामकरण हुआ, इसीलिए उन्हें उन–उन नामों से पुकारा जाता है।

(iii) अप्रत्यक्षरूप से 'एकदेववाद' की स्थापना तथा नामों में कर्म की प्रधानता को स्वीकार किया गया है।

(iv) इसी अभिप्राय को आचार्य यास्क ने इसप्रकार अभिव्यक्ति प्रदान की है–

'तासां महाभाग्याद् एकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।'[1]

(13) देवों के नामों की अनेकता

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार देवताओं के अनेक नामों के कारण के बारे में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

तासामियं विभूतिर्हि नामानि यदनेकशः।
आहुस्तासां तु मन्त्रेषु कवयोऽन्योन्ययोनिताम्।।71।।

अन्वय–हि इयम् तासाम् विभूतिः, यत् अनेकशः नामानि, तु कवयः तासाम् मन्त्रेषु अन्योन्य–योनिताम् आहुः।।71।।

अनुवाद– वस्तुतः यह उन देवताओं की 'विभूति' ही है कि इनके अनेक नाम हैं, फिर भी कवियों ने इन देवों की उत्पत्ति को मन्त्रों में अन्योन्याश्रित माना है।।71।।

'चन्द्रिका'– आशय है कि देवों के अनेक नामों के पीछे महत्त्वपूर्ण कारण इनकी विभूति अर्थात् माहात्म्य या ऐश्वर्य अथवा प्रभाव ही है, यही कारण है कि एक ही देवता को अनेक नामों से जाना जाता है, इतना ही नहीं, वैदिक ऋषियों ने तो देवों की उत्पत्ति के पीछे मन्त्रों में एक दूसरे के आश्रित होने को भी कारण कहा है, **जैसे**– इन्द्र, मरुतों के सहयोग से संसार में जल–वृष्टि का कारण बनते हैं, यही इनकी अन्योन्याश्रिता कही जाएगी।

---

[1] . निरुक्त– 7/5 ।

(17) अग्नियों का त्रिविध रूप

अवतरणिका– तत्पश्चात् 'पार्थिव अग्नि' तथा दिव्य अग्नि अन्तर के विषय में उल्लेख करते हुए, ग्रन्थकार कहते हैं कि–

नीयतेऽयं नृभिर्यस्मान् नयत्यस्मादसौ च तम्।
तेनेमौ चक्रतुः कर्म सनामानौ पृथक्–पृथक्।।91।।

अन्वय– यस्मात् अयम् नृभिः नीयते नयति, तेन असौ च तम् इमौ अस्मात् सनामानौ पृथक् पृथक् कर्म चक्रतुः।।91।।

अनुवाद– क्योंकि यह 'पार्थिव अग्नि' लोगों द्वारा आगे ले जायी जाती है, इसलिए वह दिव्य अग्नि इसे संसार से अग्रसर करता है, अतः नामों की समानता होते हुए भी ये दोनों अग्नि अपने–अपने कामों में अलग–अलग अग्रसर रहते हैं।।91।।

'चन्द्रिका'– यहाँ पर ग्रन्थकार ने पृथिवी से सम्बन्धित सामान्य अग्नि तथा द्युलोक में स्थित दिव्य अग्नि सूर्य के नामों की समानता के आधार पर अपने–अपने कर्मों को अलग–अलगरूप से करने की बात

का उल्लेख करते हुए कहा कि– अपने दैनिक जीवन में यज्ञ करने के लिए याज्ञिक लोग अग्नि को क्रमशः अपने आगे की ओर ले जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप दिव्य अग्नि यज्ञ करने वाले लोगों को उत्कृष्ट लोकों में ले जाने के लिए इस संसार से अग्रसर करता है। इसप्रकार कहा जा सकता है कि इन दोनों अग्नियों में नामों की समानता होने पर भी कर्मों में पर्याप्त अन्तर है।

विशेष–(i) 'पार्थिव अग्नि' तथा दिव्य अग्नि में नामों की समानता के साथ अग्रसर करने विषयक साम्य का कथन किया है, इस लोक में अग्नि को अग्रसर किया जाता है, जबकि दिव्य अग्नि व्यक्ति को इस लोक से पुण्य लोक में अग्रसर करता है।

अवतरणिका– इसके बाद अग्नि के ही दूसरे नाम 'जातवेदस्' के विषय में उल्लेख करते हुए, ग्रन्थकार कहते हैं कि–

यद्विद्यते हि जातः सञ्जातैर्यद्वात्र विद्यते।
तेनेमौ तुल्यनामानौ उभौ लोकौ समाप्नुतः।।92।।

अन्वय– यत् जातः हि विद्यते, यत् वा अत्र सञ्जातैः विद्यते, तेन तुल्य–नामानौ इमौ उभौ लोकौ समाप्नुतः।।92।।

अनुवाद– क्योंकि जन्म लेने पर ही उसे जाना जाता है या वह यहाँ पर जीवों द्वारा जाना जाता है, इसलिए ये दोनों समान नाम अर्थात् जातवेदस् होते हुए भी दोनों लोकों को अलग–अलग रूप से व्याप्त करते हैं।।92।।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय है कि 'पार्थिव अग्नि' को लोग उत्पन्न होने के बाद ही जान पाते हैं, इसके विपरीत मध्यस्थानी 'जातवेदस्' अपनी स्थिति मात्र से ही सभी प्राणियों द्वारा जाना जाता है, (जातानि वेद तानि वैनं विदुः)। इसप्रकार दोनों में किञ्चित् वैषम्य होने पर लोग इन्हें अलग–अलगरूप से व्याप्त हुआ मानते हैं।

विशेष–(i) मध्य स्थानी अग्नि का जातवेदस् नाम, द्युलोक की अग्नि का वैश्वानर तथा 'पार्थिव अग्नि' का सामान्य 'अग्नि' नाम के विषय में पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है।

(ii) यहाँ पर ग्रन्थकार ने इन दोनों अग्नियों के नामों के वैशिष्ट्य तथा भिन्नता के विषय में उल्लेख किया है।

(iii) 'पार्थिव अग्नि' को अरणि आदि से उत्पन्न होने की स्थिति के बाद ही जाना जा सकता है। अन्तरिक्षलोक स्थानी होने से जात–वेदस् को भी दिव्य अग्नि की श्रेणी में रखा गया है। यद्यपि आगे ग्रन्थकार इन तीनों में ही अभेद की स्थापना करेंगे।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार **नैपातिक अग्नि** के नामों के बारे में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

विसृजन्नयमेतेषां भ्राजते व्योम्नि मध्यमः।
निपातमात्रे कथ्यन्ते तथाग्नेयानि कानिचित्।।93।।

अन्वय– अयम् व्योम्नि मध्यमः विसृजन् एतेषाम् भ्राजते तथा कानिचित् आग्नेयानि निपात–मात्रे कथ्यन्ते।।93।।

अनुवाद– क्योंकि यह अग्नि आकाश के मध्य स्थित होकर, वर्षा करते हुए प्रकाशित होता है, इसलिए यहाँ इसका नैपातिक उल्लेख हुआ है, इसीप्रकार दूसरे आग्नेय मन्त्रों में भी अग्नि के 'नैपातिक' नाम हो सकते हैं।।93।।

'चन्द्रिका'–अन्तरिक्ष में स्थित अग्नि जिसे 'जातवेदस्' संज्ञा प्रदान की गयी है, वह आकाश के मध्य में विराजमान होकर, वृष्टि करते हुए, विद्युत् के रूप में प्रकाशित होता है, इस दृष्टि से इस प्रसङ्ग में इसे **नैपातिक देवता** की श्रेणी में रखा जाएगा, क्योंकि वर्षा कराने का मुख्य कार्य तो इन्द्र का है, वही यहाँ प्रधान देवता होगा, अग्नि विषयक दूसरे मन्त्रों में भी इसप्रकार के नैपातिक नाम देखने में आते हैं।

विशेष–(i) आशय है कि वेदों में अनेक स्थलों पर अग्नि से सम्बन्धित मन्त्रों में अग्नि का ही नैपातिक अर्थात् गौणरूप में प्रयोग हुआ है, ऐसे मन्त्रों को भी विशेषरूप से पहचानने की आवश्यकता है।

(ii) निरुक्तकार (7/4) ने अनादिष्ट देवों को नैपातिक कहा है।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार अग्नि त्रय के ही दूसरे नामों के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अर्चिभिः केश्ययं त्वग्निर्विद्युद्भिश्चैव मध्यमः।
असौ तु रश्मिभिः केशी तेनैनानाह कैशिनः।।94।।

अन्वय– अयम् अग्निः अर्चिभिः केशी, तु विद्युद्भिः च मध्यमः एव, असौ तु रश्मिभिः केशी, तेन ऐनान् कैशिनः आह।।94।।

अनुवाद– यह 'पार्थिव अग्नि' ज्वालाओं के रूप में, मध्य में स्थित अग्नि विद्युत्रूपी केशों से युक्त तथा वह दिव्य अग्नि रश्मियों रूपी केशों से युक्त होती है, इसीलिए ऋषि (कवि) लोग इन्हें 'केशी' कहते हैं।।94।।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में अग्नि की तीन अवस्थाओं में तीन नामों के वैशिष्ट्य का उल्लेख किया गया है, तदनुसार– **प्रथम**, 'पार्थिव अग्नि' अपने ज्वालारूपी केशों के कारण 'केशी' कही जाती है, **द्वितीय**, मध्यम स्थानी अर्थात् अन्तरिक्ष में स्थित 'जातवेदस्' अग्नि जो वस्तुतः विद्युत्रूपी केशों से युक्त होने से 'केशी' कही गयी है, **तृतीय**, इसी प्रकार सूर्यरूपी दिव्य अग्नि अपने तेजस्वी रश्मिरूपी केशों के कारण 'केशी' कहलाती है।

विशेष–(i) उक्त श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–25)

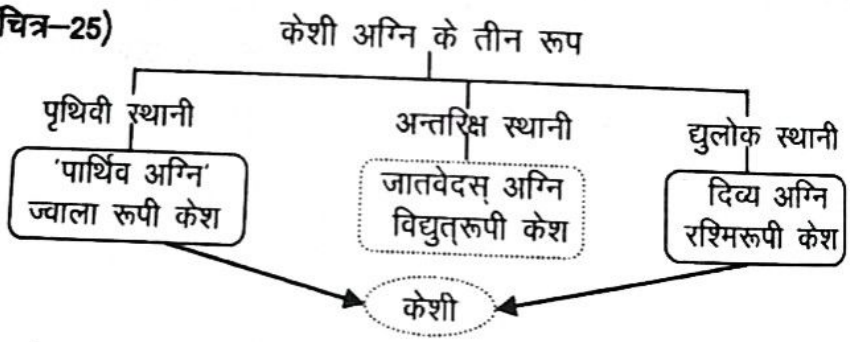

(ii) तीनों अग्नियों के भिन्न–भिन्न स्थानों पर होने पर भी तीनों में ऐक्य की स्थापना की गयी है, इसके अतिरिक्त ज्वालादि में केशों का आरोप करने से रूपक अलङ्कार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार इसी विषय में फिर से उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

एतेषां तु पृथक्त्वेन त्रयाणां केशिनामिह।

संलक्ष्यन्ते प्रक्रियासु त्रयः केशिन इत्यृचि।।95।।

अन्वय– एतेषाम् त्रयाणाम् केशिनाम् तु इह ऋचि प्रक्रियासु पृथक्त्वेन संलक्ष्यन्ते, त्रयः केशिन इति ।।95।।

अनुवाद– यहाँ पर इन तीन केशों से युक्त अग्नियों की अलग–अलग प्रकृति के कारण ऋचाओं में भी, इन तीनों का इनकी विशेषताओं के आधार पर विभेद किया गया है, जैसे– त्रयः केशिनः।।95।।

'चन्द्रिका'– जिसप्रकार इससे पूर्व श्लोक में वैश्वानर, जातवेदस् एवं 'पार्थिव अग्नि' की क्रमशः रश्मियों, विद्युत् एवं ज्वालारूपी केशों के कारण इन तीनों को वेद मन्त्रों में केशों से युक्त बताया गया है, उसी प्रकार अग्नियों की अलग–अलग प्रकृति के कारण ही वेद की ऋचाओं में भी, इन तीनों के मध्य में इनकी विशेषताओं के आधार पर विभेद किया गया है, **जैसे–** 'त्रयः केशिनः' इसप्रकार कहकर इनकी एकरूपता मानते हुए भिन्नरूप में स्तुति की गयी है।

विशेष–(i) इस श्लोक के समान ही ऋग्वेद के 1/164/44 मन्त्र के विषय में सर्वानुक्रमणी के विचार भी द्रष्टव्य हैं, क्योंकि वहाँ भी इसीप्रकार के विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।

(18) अग्नि, जातवेदस् एवं वैश्वानर

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार पार्थिव अग्नि, जातवेदस् तथा वैश्वानर के ही विषय में फिर से कहते हैं कि–

न चैवैषां प्रसूतिर्वा विभूतिस्थानजन्म वा।
निर्वक्तुं शक्यमेतैर्हि कृत्स्नं व्याप्तमिदं जगत्।।96।।

अन्वय–एषाम् प्रसूतिः वा, विभूति–स्थान–जन्म वा, नैव निर्वक्तुम् शक्यम् च, एतैः हि इदम् कृत्स्नम् जगत् व्याप्तम्।।96।।

अनुवाद– इन तीनों प्रकार की अग्नियों की उत्पत्ति या इनकी विभूति, स्थान तथा जन्म की व्याख्या करना असम्भव है, क्योंकि यह सम्पूर्ण संसार इनसे व्याप्त है।।96।।

'चन्द्रिका'– पार्थिव अग्नि, जातवेदस् तथा वैश्वानर ये तीनों स्थान की भिन्नता होते हुए भी तात्त्विक दृष्टि से एक ही हैं, किन्तु यह भी सत्य है कि इनकी उत्पत्ति, विभूति, स्थान एवं जन्मादि के विषय में विस्तार से उल्लेख करना लगभग असम्भव है और इसका महत्त्वपूर्ण कारण है कि इन तीनों ने ही इस सम्पूर्ण संसार अर्थात् तीनों लोकों को व्याप्त किया हुआ है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक के अभिप्राय को संक्षेप में इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–26) **पार्थिव अग्नि, जातवेदस् तथा वैश्वानर**

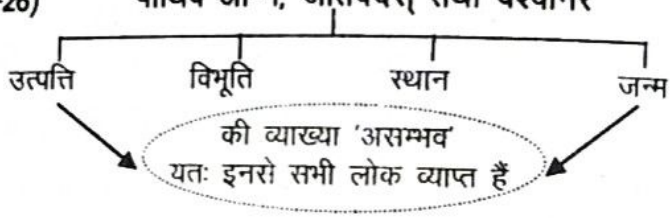

(ii) इसी विषय में ग्रन्थकार ने अग्रिम 1/97 श्लोक में भी उल्लेख किया है।

(iii) अभिप्राय है कि यह बात सही है कि ये तीनों अग्नियाँ प्रकाश की दृष्टि से समान हैं, किन्तु इन तीनों के जन्म, आवास एवं शक्तियाँ तीनों ही भिन्नता लिए हुए हैं।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार उक्त तीनों अग्नियों के विषय में पुनः उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

वैश्वानरं श्रितो ह्यग्निरग्निं वैश्वानरः श्रितः।
अनयोर्जातवेदास्तु तथैते जातवेदसी।।97।।

अन्वय– हि अग्निः वैश्वानरम् श्रितः, वैश्वानरः अग्निम् श्रितः, जातवेदाः तु अनयोः तथा एते जातवेदसी।।97।।

अनुवाद– वस्तुतः 'पार्थिव अग्नि' वैश्वानर में निहित है तथा वैश्वानर, अग्नि में विद्यमान है, जबकि 'जातवेदस्' इन दोनों में ही स्थित है, इसलिए ये दोनों 'जातवेदस्' के ही रूप हैं।।97।।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने तीनों लोकों में स्थित पार्थिव, जातवेदस् एवं वैश्वानर, इन तीनों अग्नियों को अन्योन्याश्रित

बताते हुए कहा कि पृथिवी लोक में विद्यमान यह पार्थिव अग्नि, वस्तुतः दिव्यलोक में स्थित वैश्वानर नामक अग्नि में निहित है, जबकि वह वैश्वानर अग्नि, इस 'पार्थिव अग्नि' में विद्यमान है, इसके अतिरिक्त मध्यस्थानी जातवेदस् अग्नि तो इन दोनों ही अग्नियों में स्थित है, इसलिए ये दोनों जातवेदस् के ही रूप में ही जानी जाती हैं, क्योंकि तात्त्विक दृष्टि से इन तीनों में कोई भेद नहीं है।

विशेष–(i) निरुक्त 7/20 में भी आचार्य यास्क ने इसीप्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति की है।

(ii) उक्त तीनों अग्नियों के विरोधाभासी स्वरूप के विषय में विद्वानों को गहनता से जानने की आवश्यकता है, यह अभिप्राय है।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार इसी विषय में फिर से उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

सालोक्याच्चैकजातत्वाद् व्याप्तिमत्त्वात्तु तेजसः।
तस्य तस्येह देवत्वं दृश्यन्ते च पृथक् स्तुताः।।98।।

अन्वय– सालोक्यात् च, एकजातत्वात्, व्याप्तिमत्त्वात्, तेजसः तु, इह तस्य–तस्य देवत्वम् दृश्यन्ते, पृथक् च स्तुताः।।98।।

अनुवाद– एक ही लोक के होने से तथा समान जन्म लेने से और सभी में तेज के निहित होने से, यहाँ वेद मन्त्रों में प्रत्येक देवता की दिव्यप्रकृति दृष्टिगोचर होती है, किन्तु फिर भी इनकी अलग–अलग रूप में स्तुति की गयी है।।98।।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय है कि समान तेजस्विता एवं आवास, उत्पत्ति तथा प्रकृति इन तीनों ही दृष्टियों से एक समान होते हुए भी वैदिक सूक्तों में ऋषियों द्वारा इनकी स्तुति अलग–अलग देवों के रूप में की गयी है, इसलिए वेदमन्त्रों के प्रयोक्ता को ऐसे स्थलों पर देवता का निर्धारण अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि ऐसे स्थलों पर त्रुटि की पर्याप्त सम्भावना रहती है।

विशेष–(i) आगे श्लोक संख्या 101 में भी इसी बात को भिन्न प्रकार से कहा गया है।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार इसप्रकार के स्थलों पर देवता के निर्धारण के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

यत्त्वाग्नेयमिति ब्रूमः सूक्तभाक् तत्र पार्थिवः।
जातवेदस्यमित्युक्ते सूक्तेऽस्मिन्मध्यमः स्मृतः।।99।।

अन्वय– यत् तु आग्नेयम् इति ब्रूमः, तत्र पार्थिवः सूक्त–भाक्, जातवेदस्यम् इति, सूक्ते उक्ते, अस्मिन् मध्यमः स्मृतः।।99।।

अनुवाद– जब हम किसी सूक्त द्वारा अग्नि को सम्बोधित करते हैं, तो इस स्थिति में उस सूक्त का देवता 'पार्थिव अग्नि' होता है, किन्तु जब कोई सूक्त 'जातवेदस्' को सम्बोधित किया जाता है, तो मध्य में स्थित अग्नि को उसका देवता मानना चाहिए।।99।।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने दो बातों का विशेषरूप से उल्लेख किया है (क) जब हम वेद में प्रयुक्त किसी सूक्त विशेष द्वारा सामान्य 'अग्नि' को सम्बोधित करते हैं, तो ऐसी स्थिति में उस सूक्त का देवता 'पार्थिव अग्नि' को मानना चाहिए, किन्तु इसके विपरीत जब किसी सूक्त–विशेष में 'जातवेदस्' नामक अग्नि को सम्बोधित किया जाता है, तो हमें मध्य स्थान में विद्यमान अग्नि को ही उस मन्त्र का देवता स्वीकार करना चाहिए।

विशेष–(i) यद्यपि इन दोनों ही स्थितियों में वह मन्त्र एक ही अग्नि तत्त्व को समर्पित होता है, किन्तु फिर भी स्थान को महत्त्व देते हुए, इनमें भिन्नता निर्धारित की गयी है।

(ii) यद्यपि 'तिस्र एव देवताः' सिद्धान्त के अनुसार तो 'जातवेदस्' अग्नि के लिए देवता मध्य स्थानी 'इन्द्र' होना चाहिए, किन्तु यहाँ ऐसा न करके भिन्न सिद्धान्त की स्थापना की गयी है।

अवतरणिका– इसके बाद ग्रन्थकार वैश्वानर अग्नि के विषय में उल्लेख करके, ऐसे मन्त्रों में देवता का निर्धारण करते हैं कि–

वैश्वानरीयमिति तु यत्र ब्रूमोऽथ वा क्वचित्।
सूर्यः सूक्तस्य भाक् तत्र ज्ञेयो वैश्वानरस्तुतौ।।100।।

अन्वय– तु यत्र वैश्वानरीयम् इति ब्रूमः, अथवा क्वचित् तत्र वैश्वानर–स्तुतौ सूक्तस्य सूर्यः भाक्, ज्ञेयः।।100।।

अनुवाद– या फिर जब कुछ स्थलों पर किसी सूक्त में वैश्वानर को सम्बोधित करते हैं, तो उस स्थिति में वैश्वानर की स्तुति में, सूर्य को ही उस सूक्त का देवता समझना चाहिए।।100।।

'चन्द्रिका'– इसप्रकार मध्यस्थानी अग्नि जातवेदस् के विषय में उल्लेख करने के बाद, यहाँ द्युस्थानी 'वैश्वानर' अग्नि के सम्बन्ध में कथन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि उल्लेखनीय है कि वेद मन्त्रों में यदि कुछ स्थलों पर, किसी सूक्त विशेष में द्युस्थानीय 'वैश्वानर' नामक अग्नि को सम्बोधित किया गया हो तो उस स्थिति में वैश्वानर की स्तुति प्रसङ्ग में, उस मन्त्र या सूक्त का देवता सूर्य को ही समझना चाहिए।

विशेष–(i) इस व्यवस्था एवं पूर्व श्लोक की व्यवस्थाओं में स्पष्ट रूप से भिन्नता प्रतीत हो रही है, ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ वैश्वानर का प्रतिनिधि 'सूर्य' को माना गया है, किन्तु वहाँ 'जातवेदस्' का प्रतिनिधि 'इन्द्र' को स्वीकार नहीं किया गया है।

(ii) सम्भवतः तेजस्विता एवं दिव्यता में सूर्य एवं वैश्वानर को समान माना गया है।

(19) अवरोहण क्रम तथा देवता

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार तीनों लोकों के देवताओं के आरोहक एवं अवरोहक क्रम के विषय में कहते हैं कि–

सूर्यप्रसूतावग्नी तु दृष्टौ पार्थिवमध्यमौ।
एतेषामेव लोकानां त्रयाणामध्वरेऽध्वरे।।101।।
रोहात्प्रत्यवरोहेण चिकीर्षन्नाग्निमारुतम्।
शस्त्रं वैश्वानरीयेण सूक्तेन प्रतिपद्यते।।102।।